दिल्ली विश्वविद्यालय: पतन की पड़ताल

प्रेम सिंह

(*शिक्षा और शिक्षा-व्यवस्था के साथ खिलवाड़ देखना हो तो भारत उसके लिए सबसे उपयुक्त जगह है. यहां की सरकारों और सरकारों के समर्थक बुद्धिजीवियों ने जैसे कसम खा ली है कि भारत से जेनुइन ज्ञान-विज्ञान की प्रतिभा को खत्म कर देना है. यह लेख 2013 में लिखा गया था, जब दिल्ली विश्वविद्यालय में चार साला बीए प्रोग्राम (एफवाईयूपी) बिना समुचित तैयारी के थोप दिया गया था. शिक्षकों और छात्रों के बड़े हिस्से ने एफवाईयूपी थोपने के फैसले का विरोध किया था. उस दौरान मैंने एफवाईयूपी के विरोध में राजघाट पर चार दिन का अनशन किया था. भाजपा सरकार ने 1914 में सत्ता में आने के बाद एफवाईयूपी को निरस्त कर दिया था. वाही भाजपा सरकार नई शिक्षा नीति के तहत दिल्ली विश्वविद्यालय में एफवाईयूपी थोपने का निर्णय कर चुकी है. पहले जैसा विरोध इस बार नहीं हुआ. अगले अकादमिक सत्र से एफवाईयूपी के तहत दाखिले, पढ़ाई और परीक्षाएं होंगी. यह बताता है कि शिक्षा और शिक्षा-व्यवस्था को लेकर सभी राजनीतिक पार्टियों का साझा नवउदारवादी अजेंडा है, और भारत उस रस्ते पर काफी आगे निकल आया है. उस समय 'युवा संवाद' में प्रकाशित हुआ यह विशेष लेख सनद के रूप में आपके पढ़ने के लिए यथावत फिर से जारी किया गया है.*)

संकट में संस्थान

दिल्ली विश्वविद्यालय भारत के बड़े और प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में से एक है। इसकी स्थापना 1922 में हुई थी। स्थापना के वक्त इसके तहत केवल तीन कॉलेज - सेंट स्टीफेंस कॉलेज (स्थापना 1881), हिंदू कॉलेज (स्थापना 1899) और रामजस कॉलेज (स्थापना 19 17), दो संकाय - कला और विज्ञान - तथा 750 छात्र थे। तब से अब तक दिविवि ने लंबी यात्रा तय करते हुए देश के अग्रणी विश्वविद्यालय का मुकाम हासिल किया है। आज दिविवि के तहत करीब 80 कॉलेज, 16 संकाय, 86 विभाग हैं, जिनमें करीब डेढ़ लाख नियमित छात्र स्नातक और स्नातकोत्तर की पढ़ाई करते हैं। दिविवि स्कूल ऑफ़ ओपन लर्निंग (एसओल), जिसे पहले स्कूल ऑफ़ कोरेसपोंडेस कहा जाता था, के माध्यम से करीब तीन लाख छात्रों को पत्राचार से स्नातक और स्नाताकोत्तर की शिक्षा प्रदान करता है। अनौपचारिक शिक्षा ग्रहण करने वाले इन सब छात्रों के लिए पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराए जाने के अलावा अध्यापन की भी व्यवस्था है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में यह अकेला विश्वविद्यालय है जो अपने पाठ्यक्रम, अध्यापन और परीक्षा की गुणवत्ता के चलते पूरे देश के छात्रों के आकर्षण का केंद्र रहा है। दिविवि से स्नातक करना सम्मान की बात मानी जाती है, और यहां से हासिल की गई डिग्री की देश-विदेश में सबसे ज्यादा प्रतिष्ठा है।

पिछले कुछ सालों से दिल्ली विश्वविद्यालय दोहरे संकट का सामना कर रहा है। पहला, खुद दिविवि का आंतरिक संकट है, जिसके तहत न केवल उसकी महत्वपूर्ण संस्थाएं (अकादमिक मामलों में सर्वोच्च विद्वत परिषद और निर्णयों के लिए सर्वोच्च कार्यकारी परिषद) अपनी निर्धारित भूमिका और महत्व खोते जा रहे हैं। इसका असर विभागीय परिषदों, विभिन्न संकायों की बैठकों और कॉलेजों की स्टाफ काउंसिलों पर भी पड़ा है। कुलपतियों द्वारा अहम फैसले अलोकतांत्रिक ढंग से, जल्दबाजी में, असहमति का निरादर करते हुए लिए जाते हैं। शिक्षक संगठन डूटा और छात्र संगठन डूसू का दिविवि में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। शिक्षकों और छात्रों के हितों के लिए संघर्ष करने वाले इन संगठनों का भी अवमूल्यन हुआ है। जब समाज के अन्य क्षेत्रों में स्वतंत्र सोच और असहमति के लिए जगह सिकुड़ती है, तो लोग विश्वविद्यालयों की तरफ देखते हैं और वहां से प्रेरणा पाते हैं। दिविवि में ऐसा माहौल बन चुका है कि कुलपति ही नहीं, बहुत-से शिक्षक भी विश्वविद्यालय के अर्थ और अवधारणा के प्रति जागरूक प्रतीत नहीं होते।

दिविवि के इस आंतरिक संकट को न तो नवउदारवादी दुष्प्रभावों के मत्थे मढ़ा जा सकता है, न नेताओं और नौकरशाही के हस्तक्षेप के। यह कहना तसल्ली की बात नहीं मानी जा सकती कि राजनीतिक हस्तक्षेप करके नेता कमजोर लोगों को महत्वपूर्ण पदों पर बिठा देते हैं; मंत्रालय व यूजीसी के नौकरशाह बेजा दखलंदाजी करते हैं; कई बार उन्हें कुलपति बना कर थोप दिया जाता है; और ऊपर से थोपे गए लोग विश्वविद्यालय की संस्थाओं और नियम-कायदों को धता बता कर मनमाने ढंग से सरकार का एजेंडा लागू करते हैं। सीधी बात यह है कि अगर दिविवि का निर्धारित आंतरिक ढांचा हर स्तर पर मजबूत हो तो ऊपर से थोपे गए किसी व्यक्ति की मनमानी ज्यादा देर नहीं चल सकती। शिक्षकों की भूमिका विश्वविद्यालय के आंतरिक ढांचे के अंतर्गत सबसे महत्वपूर्ण होती है। सभी संस्थाओं और गतिविधियों में वे शामिल होते हैं। अगर शिक्षक मजबूत और अपनी भूमिका के प्रति गंभीर होंगे तो आंतरिक ढांचा कमजोर नहीं हो सकता और ऊपर से थोपे गए कमजोर या अवांछित लोग समय काट कर या समय से पहले विदा हो जा सकते हैं। शिक्षकों की मजबूती से सबक लेकर नेता और नौकरशाह अपना रवैया बदलने के लिए बाध्य भी हो सकते हैं। यह तर्क कि कुलपतियों व नौकरशाहों का विरोध करने से शिक्षकों के काम रुक जाते हैं, कतई वाजिब नहीं कहा जा सकता। शिक्षकों का मूलभूत काम अध्यापन है, अगर वही बिगड़ रहा हो तो उनकी अपनी तरक्की और परियोजनाएं लेने का काम आगे बढ़ता भी रहे तो छात्रों को उससे कोई फायदा नहीं होता। यह चर्चा हमने इसलिए की है कि राजनीतिक और नौकरशाही के हस्तक्षेप से पैदा होने वाली विश्वविद्यालय के नियमन संबंधी समस्याओं को ही कुछ विद्वान उच्च शिक्षा का संकट बता देते हैं।

दिविवि का दूसरा संकट उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और उपलब्धता को लेकर है। अभी तक दिविवि में राष्ट्रीय स्तर पर लागू 10+2+3 के तहत बीए, बीएससी, बीकाम के आनर्स और प्रोग्राम की पढ़ाई होती है। पाठ्यक्रम का स्वरूप ऐसा है कि उत्तीर्ण छात्र विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में लग सकते हैं अथवा/और स्नातकोत्तर/शोध के लिए आगे पढ़ाई जारी रख सकते हैं। इनमें से कोई न कोई कोर्स पढ़ने के लिए बहुत-से विदेशी छात्र भी दिविवि आते हैं। दिविवि के कुछ कालिज मेडिकल, इंजीनियरी (दिविवि के इंजीनियरिंग कालिज को कुछ वर्ष पहले अलग कर दिया गया), नर्सिंग, होम साइंस, एप्लाइड सांइस, बीएड व बीएलएड, पत्रकारिता आदि व्यावसायिक कोर्स कराते हैं। अलग संकायों में प्रबंधन और लॉ भी पढ़ाए जाते हैं। स्नातक अथवा स्नातकोत्तर पढ़ाई करते हुए भारतीय और विदेशी भाषाओं के सर्टिफिकेट व डिप्लोमा कोर्स भी उपलब्ध हैं। इच्छुक छात्र कुछ भाषाओं में स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्री भी कर सकते हैं।

इन कोर्सों की गुणवत्ता और उपलब्धता निरंतर बढ़ती रहे, इसके प्रयास होते रहना जरूरी है। वैसे प्रयासों को ही उच्च शिक्षा में सही सुधार कहा जाएगा। लेकिन नवउदारवादी नीतियों के तहत 'सुधार' की वकालत करने वाले उच्च शिक्षा के हर कोर्स को राजगारोन्मुख/बाजारोन्मुख बनाने पर तुले रहते हैं। दूसरे, उनका आग्रह होता है कि दिविवि का पाठ्यक्रम और परीक्षा-व्यवस्था ऐसी हो कि यहां के छात्र पढ़ाई के दौरान और पढ़ाई के बाद विदेश, विशेषकर अमेरिका में अपनी पढ़ाई सुभीते से जारी रख सकें। दूसरे शब्दों में, वे नकल को सुधार का नाम देते हैं। दिविवि में तीन साल पहले थोपे गए समेस्टर सिस्टम और इस अकादमिक सत्र से थोपे गए चार साला स्नातक प्रोग्राम (एफवाईयूपी) की यही सच्चाई है। और यही दिविवि में उच्च शिक्षा का असली संकट है। सेमेस्टर प्रणाली और एफवाईयूपी के तहत उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को ही चोट नहीं पहुंचाई गई है, शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों के बीच व्यवस्थित तरीके से भेदभाव की नींव डाली गई है। एक वाक्य में, यह प्रोग्राम पूरी तरह से छात्र-विरोधी है।

विशेष तौर पर सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े छात्रों को दो साल बाद डिप्लोमा लेकर विश्वविद्यालय से बाहर निकलना होगा। जिस तरह से स्कूल में अलग-अलग स्ट्रीम लेने वाले सभी छात्रों को 11 फाउंडेशन कोर्स अनिवार्य रूप से पढ़ने हैं, हो सकता है उनमें बहुत-से बिना डिप्लोमा के ही बाहर हो जाएं। इस प्रोग्राम के तहत शारीरिक तौर पर विकलांग छात्रों की पढ़ाई बुरी तरह बाधित होगी। कोर्ट ने भी इस बाबत दिविवि को आगाह किया है। उच्च शिक्षा की प्राप्ति के रास्ते में पहले से ही कई तरह की बाधाओं से घिरी विशेष तौर पर गांव-कस्बों की लड़कियों और मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय, जो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में काफी पिछड़ा है, के लिए उच्च शिक्षा का रास्ता और दुर्गम हो जाएगा। आनर्स की डिग्री हासिल करने के इच्छुक छात्रों का एक साल अतिरिक्त लगेगा, जिसका उनके अभिभावकों पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ पड़ेगा। हालांकि उन्हें भी जो ज्ञान

मिलेगा वह तीन साला आनर्स कोर्स से कमतर होगा। यह प्रोग्राम भेदभाव की नींव पर स्थित है, यह इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि एसओएल में पढ़ने वाले करीब 3 लाख छात्रों को इसके लायक नहीं समझा गया है। विद्वत परिषद के पूर्व सदस्य और एसओएल के शिक्षक रहे वीपी जैन ने ठीक ही इन लाखों छात्रों को आधुनिक एकलव्यों की संज्ञा दी है।

कुलपति का यह कहना कि पहले या दूसरे साल में पढ़ाई छोड़ देने वाले 30 प्रतिशत छात्रों पर रोक लगेगी गैर-जिम्मेदाराना और भ्रामक है। अब दो साल बाद उन्हें अनिवार्य रूप से कालिजों से बाहर कर देने की व्यवस्था कर दी गई है। जबकि जरूरत इस बात की है कि दाखिला लेने वाला एक भी छात्र न पढ़ाई छोड़े, न फेल हो। क्योंकि फेल छात्र नहीं, शिक्षक और संस्थान होते हैं। दरअसल, इस प्रोग्राम का संदेश साफ है - जो कमजोर हैं, वे डिप्लोमा लेकर छोटी नौकरी की तलाश करें ताकि बड़ी नौकरियां बड़े लोगों के बच्चों को मिलती रहें। इस प्रोग्राम से सबसे ज्यादा अन्याय इस साल दाखिला लेने वाले साधारण हैसियत के छात्रों के साथ हुआ है। उनमें और उनके अभिभावकों में असमंजस और अनिश्चितता की स्थिति है कि दिविवि की डिग्री का उनका सपना पूरा होगा या नहीं?

यह छात्रों के प्रति हद दर्जे की गैर-जिम्मेदारी है कि एफवाईयूपी 24 दिसंबर 2012 को विद्वत परिषद की तीन दिन के नोटिस पर बुलाई गई विशेष बैठक में पहली बार रखा गया और पारित हो गया। अगले दिन कार्यकारी परिषद में भी यह औपचारिकता पूरी कर ली गई। विरोध का कोई मूल्य था ही नहीं। विद्वत परिषद और कार्यकारी परिषद के जिन चुने गए सदस्यों ने इस प्रोग्राम का समर्थन किया, वे अगर वैसा न भी करते तब भी वह पारित होता। सूचना के अनुसार उसके कुछ दिन पहले नवंबर में 'उत्सवप्रिय' कुलपति ने एफवाईयूपी पर चर्चा करने के लिए विशेष तौर पर बुलाए गए 10 हजार छात्रों, शिक्षकों और अभिभावकों का एक मेला लगाया था! 5 मार्च 2013 को विभिन्न विभागों को 15 दिनों में नया पाठ्यक्रम तैयार करके देने के लिए कहा गया, जिसे एक महीना और बढ़ाया गया। उसी तरह से आनन-फानन में समाज-विज्ञान और विज्ञान संकायों की बैठकें आयोजित की गईं और कोर्स कमेटी वगैरह की औपचारिकताएं निभाई गईं।

इस मामले में सबसे ज्यादा चिंता की बात है कि पाठ्यक्रम आधा-अधूरा है और छात्रों के लिए पाठ्य सामग्री नहीं है; न शिक्षक। पिछले करीब 4 साल से दिविवि में शिक्षकों की नियुक्तियां बंद हैं, जबकि 4 हजार पद खाली पड़े हैं। गोया सुधारों को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षकों की नियुक्तियां रोके रखना जरूरी हो! नए पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिए शिक्षकों को कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया है। कुलपति और उनके समर्थकों की बस एक ही टेक है - 'अमेरिका में ऐसा होता है'। वे यह भी

सुनने और सोचने के लिए तैयार नहीं हैं कि अमेरिका सहित किसी भी पूंजीवादी देश में शिक्षा संबंधी बदलाव जैसा गंभीर काम इस फूहड़ ढंग से करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

ऐसे में यह स्वाभाविक है कि विवादास्पद एफवाईयूपी को लेकर पिछले कुछ महीनों से लगातार बहस चल रही है। बहस एकतरफा है, जो इस प्रोग्राम का विरोध करने वाले शिक्षकों, छात्रों, शिक्षाविदों, विद्वानों और नागरिक समाज के गणमान्य व्यक्तियों की तरफ से चलाई जा रही है। प्रोग्राम को लागू करने वाले - दिविवि के कुलपति व उनकी टास्क फोर्स और दोनों मानव संसाधन मंत्री - किसी भी तर्क का जवाब न देकर महज ताकत के 'तर्क' से अपने फैसले पर अडिग हैं। राष्ट्रपति, जो दिविवि के विजिटर हैं, और प्रधानमंत्री, जो संसद के सर्वोच्च नेता हैं, पूरे प्रकरण में चुप्पी साधे हुए हैं। जबकि देश के कई प्रतिष्ठित विद्वान उन्हें पत्र लिख चुके हैं और मिल कर यह प्रोग्राम कम से कम इस साल स्थगित करने की प्रार्थना कर चुके हैं। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का यह रुख दर्शाता है कि यूपीए सरकार उच्च शिक्षा में नवउदारवादी एजेंडा लागू करने का निर्णायक फैसला कर चुकी है। सरकार का फैसला यह है कि नवउदारवादी एजेंडे के तहत जिस तरह अर्थव्यवस्था पहले से आर्थिक रूप से मजबूत लोगों को और मजबूत बनाने के लिए बनाई जाती है, शिक्षा व्यवस्था को भी उसी तरह बनाना है। पिछले दो दशकों में यह काम स्कूली और व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था में काफी तेजी से किया गया है। अब सार्वजनिक क्षेत्र के उच्च शिक्षा संस्थानों की बारी है। 12वीं पंचवर्षीय योजना में यह एजेंडा अच्छी तरह से रखा गया है। इस प्रोग्राम के हिमायती मानव संसाधन राज्यमंत्री शशि थरूर ने खुद कहा है कि चार साला स्नातक प्रोग्राम नहीं होने के चलते यहां के छात्रों को अमेरिका में दिक्कत का सामना करना पड़ता है। बताने की जरूरत नहीं कि यहां के कौन-से और कितने छात्र आगे पढ़ने अमेरिका जाते हैं?

एफवाईयूपी उच्च शिक्षा के नवउदारवादीकरण की दिषा में उठाया गया एक बड़ा कदम है। जाहिर है, दिल्ली विश्वविद्यालय के बाद इसे अन्य विश्वविद्यालयों में लागू किया जाएगा। कुलपति सरकार का यह काम करा ले गए तो इसमें दिविवि की आंतरिक कमजोरी सबसे बड़ा कारण रही है, जिसका हमने ऊपर जिक्र किया है। जो शिक्षक सोचते हैं कि वे कुलपति का साथ देकर कांग्रेस और भाजपा को बचा रहे हैं, वे किंचित गंभीरता से सोचेंगे तो पाएंगे कि वास्तव में वे अपने स्वत्व और पेशे की गरिमा को गंवा रहे हैं। हम यह भी कहना चाहेंगे कि इस मामले में अमेरिका का हव्वा ज्यादा नहीं खड़ा करना चाहिए, न ही उसे दोष देना चाहिए। भारत के ज्यादातर मध्य और उच्च मध्यवर्ग के भीतर बैठा अमेरिका सरकारों को यह सब करने की छूट और सहयोग देता है। देश में धड़ल्ले से चल रहा नवसामंतवाद और नवसाम्राज्यवाद का गठजोड़ शून्य में नहीं स्थित है। नवउदारवाद के खिलाफ संघर्ष को कामयाब बनाना है तो भीतर बैठे अमेरिका को विदा करना होगा।

कुल डुबाने वाले कुलपति

एक तरफ, खासकर केंद्रीय विश्वविद्यालयों के बारे में, स्वायत्तता का तर्क दिया जाता है। लेकिन उसके समानांतर यह धारणा भी चलती है कि कुलपति वही करते हैं जो सरकारें चाहती हैं। किसी विषय पर निर्णय लेने के लिए बनी विश्वविद्यालय की अधिकृत संस्थाओं और निर्धारित प्रावधानों की अनदेखी करना अथवा उनका उल्लंघन करना कुलपतियों के लिए इसीलिए संभव होता है। आम धारणा है कि राज्य विश्वविद्यालयों से लेकर केंद्रीय विश्वविद्यालयों तक कुलपतियों के चयन में राजनीतिक पैरवी अथवा/और मोटी रकम चलती है। इस तरह से नियुक्त होने वाले कुलपति अपनी 'सत्ता' दिखाने और ऊपर के आकाओं को खुश रखने के लिए पद से जुड़ी गरिमा और जिम्मेदारी की परवाह न करते हुए नियम-कायदों का दुरुपयोग करते हैं।

हम यहां थोड़ी चर्चा इस बात पर करना चाहते हैं कि मंत्री और सरकार के आदेश पर काम करने वाले कुलपतियों में पहले से ही कुछ खास 'गुण' विद्यमान होते हैं। बल्कि उनके चयन में वैसे गुणों का निर्णायक योगदान होता है। यह नवउदारवाद का दौर है। भारत के शासक वर्ग की खूबी यह है कि वह संविधान की शपथ खाकर उसकी संकल्पना और विचारधारा के पूरी तरह उलट नवउदारवादी नीतियों को हर क्षेत्र में लागू करता जा रहा है। नवउदारवादी नीतियों को उच्च षिक्षा में लागू करने के लिए सरकारें कोशिश करती हैं कि नवउदारवादी विचारधारा के गुलाम लोग कुलपति नियुक्त किए जाएं। पिछले कुछ वर्षों से तो उनके सामने शर्त रख दी जाती है कि उन्हें नवउदारवादी एजेंडा लागू करना है।

ऐसे कुलपतियों, जिनके पास अपना कोई सोच और सपना नहीं होता, की कार्यशैली और व्यवहार की विचित्रता देखने लायक होती है। दिविवि के इसके पहले कुलपति, जिन्होंने सेमेस्टर सिस्टम थोपा था, बीज बेच कर किसानों की जान खरीदने वाली मोंसेंटो जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ हेलमेल रखने वाले हैं। उन्हें एप्लाइड सांइस, मैनेजमेंट और वित्तीय अध्ययन से जुड़े विषयों को छोड़ कर, विषेषकर मानविकी और सोशल सांइस के विषय निरर्थक लगते हैं। कुलपति की हैसियत से वे सरेआम कहते थे कि जो विषय बाजार में खड़ा नहीं हो सकता, उसे विश्वविद्यालय में पड़े रहने का अधिकार नहीं है। विद्वत परिषद, कार्यकारी परिषद व यूजीसी को गलत सूचना देने अथवा गुमराह करने में उन्हें कोई नैतिक बाधा नहीं होती थी। उनके अपने शोध पर पाइरेसी का आरोप लगा तो उन्होंने 'घर की' जांच समिति बना कर अपने को पाक-साफ सिद्ध कर लिया। {बाद में कोर्ट से उन्हें सजा हुई और वे एक रात तिहाड़ जेल में बंद रहे} आपको याद होगा दिविवि के फिजिक्स विभाग की तरफ से कबाड़ में परमाणु की छड़ें बेची गई थीं जिससे हुई दुर्घटना में एक-दो लोग मारे गए थे और कुछ बुरी तरह घायल हुए थे। सारा मामला सामने आने के बावजूद

कुलपति ने काफी दिनों तक पुलिस को यह नहीं बताया कि परमाणुयुक्त कबाड़ बेचने का काम दिविवि ने किया था। पुलिस ने खुद ही कबाड़ के स्रोत का पता लगाया। कबाड़ बेचने के लिए बनी फिजिक्स विभाग की कमेटी और कुलपति उस जानलेवा दुर्घटना के लिए सीधे जिम्मेदार थे। लेकिन नवउदारवादी 'कवच' के चलते कुलपति का बाल भी बांका नहीं हुआ।

अपने कार्यकाल में उन्होंने हिंदी विभाग के दो प्रोफेसरों को यौन उत्पीड़न के आरोप से इसलिए पूरा बचा लिया क्योंकि उन्होंने सेमेस्टर सिस्टम लागू करने में उनका और सरकार का पूरा साथ दिया था। जबकि उसी मामले में आरोपित एक प्रोफेसर को उन्होंने जांच समिति की रपट के परे जाकर बर्खास्त करने का फैसला लिया था। उनके द्वारा बचाए गए दोनों प्रोफेसरों पर दिल्ली हाई कोर्ट में पीड़िता की तरफ से मुकदमा दायर है। वर्तमान कुलपति को पीड़िता ने स्वयं मिल कर यह बताया कि पिछले कुलपति द्वारा बचाए गए प्रोफेसरों पर उसने हाई कोर्ट में केस दायर किया है जो स्वीकृत हो गया है। उसने कुलपति से यह भी प्रार्थना की कि वे आरोपित प्रोफेसरों को नई बनने वाली टीम में न रखें। लेकिन कुलपति ने बिना किसी नैतिक हिचक के दोनों को अपनी टीम में रखा और आज भी दोनों उनके सबसे ज्यादा विश्वास भाजन हैं। यह उल्लेख हमने इसलिए किया है कि जो नवउदारवादी एजेंडा को थोपने में आंख मूंद कर सरकार का सहयोग करते हैं, उन पर नियम-कायदे और नैतिकता के बंधन लागू नहीं होते। बल्कि कपिल सिब्बल जैसे मंत्रियों के वे रातों-रात अत्यंत चहेते हो जाते हैं।

विचित्रता में वर्तमान कुलपति पिछले कुलपति से काफी आगे हैं। वे कभी 'माडर्न डे विक्रमादित्य' बन कर दफ्तरों और विभागों में छापामारी करते हैं, कभी दिविवि के चिन्ह हाथी को साक्षात घुमाते हैं, कभी छात्रों और अभिभावकों को इक्ठ्ठा करके रंगारंग शो करते हैं, बाकायदा दरबार लगा कर तरह-तरह के पद, पदवियां, पुरस्कार, परियोजनाएं आदि बांटते हैं, विश्वविद्यालय के संचालन के लिए बनी निश्चित संस्थाओं के बावजूद अलग से 'टास्क फोर्स' रखते हैं, वे डूटा को न मानते हैं न उसके प्रतिनिधियों से मिलते हैं और, मजेदारी यह है, मौका बेमौका अपने भाषणों में गांधी का बेतुका उल्लेख करते हैं। हमें कई विदेशि विश्वविद्यालय के कुलपतियों को सुनने का मौका मिला है। अपने संबोधन में वे हमेशा यथातथ्य बात रखते हैं और किसी चिंतक का सामान्य संबोधन अथवा साक्षात्कार में कभी उल्लेख नहीं करते। पिछले कुलपति की तरह उच्च शिक्षा पर वर्तमान कुलपति के भी 'मौलिक' विचार हैं, जो कुलपति बनने से पहले कहीं पढ़ने-सुनने को नहीं मिलते। पिछले कुलपति की तरह ही इनकी अमेरिकापरस्त 'आधुनिकता' का एक छोर घोर जातिवाद से बंधा होता है। {यहां उल्लेख कर दें कि ये महाशय दिल्ली स्थित गांधी शांति प्रतिष्ठान में 30 जनवरी 2022 को 'महात्मा गांधी स्मृति व्याख्यान' के वक्ता थे}

फ्रायड की दमित कुंठाओं के विस्फोट और युंग की अहम प्रतिस्थापन की बलवती चेष्टा के सिद्धांतों के आधार पर इन जैसे महोदयों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन काफी रोचक हो सकता है। यहां उसका अवसर नहीं है। हालांकि इतना कहा जा सकता है कि सत्तर के दशक के अंत तक भारतीय राजनीति और समाज में समता और स्वतंत्रता के संवैधानिक मूल्य केंद्र में बने रहे। स्वाभाविक है, उस माहौल में विषमता और गुलामी के पक्षधरों की इच्छाएं दमित रह जाती थीं। वे झींकते थे, लेकिन माहौल के दबाव में चुप रहना पड़ता था। समता और स्वतंत्रता की जगह विषमता और गुलामी के दर्षन को केंद्र में ले आने वाले पिछले दो दशकों के नवउदारवादी दौर में ऐसे लोगों की दमित इच्छाएं खुल कर सामने आ गई हैं। उन्हें कोई पद मिल जाए तो अपनी नजरों में बड़े से बड़े विद्वान से महान बन बैठते हैं। उनके साथ जुटने वाले बिलो मीडियोकर लोग भी अपने कुछ न कुछ महान होने का गुमान पाल लेते हैं। यह बड़ी विचित्र टीम बनती है, जो कहती है प्रोफेसर यशपाल, अनिल सदगोपाल, रोमिला थापर आदि कहां के विद्वान हैं?

बजारवाद का पाठ

अंग्रेजी विभाग के अवकाश प्राप्त शिक्षक प्रोफेसर हरीश त्रिवेदी ने एफवाईयूपी के समर्थन में 'टाईम्स आफ इंडिया' में 'इज डेल्ही यूनिवर्सिटी डाईंग?' शीर्षक लेख लिख कर अपने को इस टीम के साथ जोड़ा तो हमें आश्चर्य और अफसोस हुआ। लेख में उनके पास कोई वाजिब तर्क नहीं है। शायद वे भी जानते हैं कि उन्होंने एक भर्ती का लेख लिखा है। फिर भी हम उनके लेख के बहाने कुछ चर्चा करना चाहते हैं। यह प्रोग्राम लागू करने के लिए दिविवि के कुलपति ने धक्काशाई और लाबिंग का रास्ता अपनाया है। उनकी धक्काशाई और लाबिंग इसलिए कामयाब हो गई क्योंकि कांग्रेस सरकार, सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी भाजपा और सेंट स्टीफेंस कालिज से पढ़े अथवा वहां पढ़ाने वाले बड़े लोगों की जमात उसमें शामिल है।

कुलपति ने अपने समर्थकों की एक टास्क फोर्स भी बनाई हुई है, जिसके सदस्य खुद को इस निर्णय का कर्ता/समर्थक मान कर खुश हैं। वे कुलपति और एफवाईयूपी के बचाव में कहते हैं कि विचारधारा-विशेष के लोग ही इस बदलाव का विरोध कर रहे हैं। यह बात बहुत जोर देकर फैलाई गई। गोया समर्थन करने वालों की कोई विचारधारा नहीं है! एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में विचारधाराएं अलग-अलग होना स्वाभाविक है। लेकिन संविधान हम सबकी विचारधारा है, जिसमें समाजवाद, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता तीन मूलभूत मूल्य निहित हैं। यह ठीक है कि एफवाईयूपी के समर्थक वामपंथी विचारधारा को नहीं मानते, लेकिन क्या वे संविधान की विचारधारा को भी नहीं मानते? शिक्षा से लेकर सुरक्षा तक, हर क्षेत्र को नवसाम्राजयवादी गुलामी के शिकंजे में डालने वाले इस तरह के फैसले क्या संविधानसम्मत हैं? गांधी और टैगोर जैसे शिक्षा के मौलिक चिंतकों के देश में

क्या नवाचार के नाम पर अमेरिका की छिछली नकल करना नौनिहालों के साथ न्याय करना है? शिक्षा जैसे गंभीर व संवेदनशील विषय को लेकर धक्काशाई और लाबिंग क्या हमारी गिरावट को नहीं दर्शाता है? इन सवालों पर कुलपति के समर्थक नहीं सोचेंगे, लेकिन क्या हरीश त्रिवेदी भी नहीं सोचेंगे?

हरीश त्रिवेदी अपने लेख में यह तर्क देते हैं कि सेमेस्टर प्रणाली लागू किये जाते वक्त भी इसी तरह का विरोध हुआ था, लेकिन आज सेमेस्टर प्रणाली लागू है और चल रही है। बेहतर होता कि यह तर्क देते वक्त हरीश त्रिवेदी यह भी बताते कि सेमेस्टर प्रणाली लागू होने के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम निर्माण, अध्यापन और परीक्षा प्रक्रिया की क्या स्थिति बन गई है? वे हाल में रिटायर हुए हैं और उन्हें सारी हकीकत मालूम है। जैसा कि एफवाईयूपी लागू करने के लिए किया गया है, सेमेस्टर प्रणाली लागू करते वक्त भी फास्टफूड की तरह पाठ्यक्रम तैयार किए गए थे। उसमें स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी शामिल थे जहां पहले सेमेस्टर सिस्टम लागू किया गया। पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया में वरीयता और विषय की विशेषज्ञता को पूरी तरह से दरकिनार करके सारा काम किया गया। छात्रों तक समय से पाठ्यक्रम पहुंचे ही नहीं, न ही वे पुस्तकें जुटा पाए। आज तक स्नातक से लेकर स्नातकोत्तर तक छपा हुआ पाठ्यक्रम उपलब्ध नहीं है, जैसा पहले होता था। (अगर किसी विभाग के पास हो तो कृपया अवश्य बताएं) स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के परीक्षा के लिए प्रश्नपत्र बनाने में भी वही रवैया रहता है। परीक्षा विभाग से हटा कर सारा काम विभागों को सौंप दिया गया है। इसके चलते दिल्ली विश्वविद्यालय की परीक्षा प्रक्रिया की कोई साख नहीं बची है।

सेमेस्टर प्रणाली लागू होने के बाद से दिविवि में शिक्षण कार्य अंतिम पायदान पर चला गया है। शिक्षकों का ज्यादातर समय कक्षाएं पढ़ाने से इतर कामों में बीतता है। शिक्षकों, जिनके अध्यापन के बल पर दिविवि भारत का सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय कहलाया है, पिछले दो कुलपतियों के कार्यकाल में उन्हें नीचा दिखाने की लगातार कोशिशें की जाती रही हैं। इसे अफसोसनाक ही कहा जाएगा कि एफवाईयूपी पर दिविवि के लगभग सभी प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, डीन, प्रिंसिपल, कालिजों के ज्यादातर शिक्षक या तो चुप हैं या उदासीन। डूटा में कांग्रेस और भाजपा के शिक्षक नेता कुलपति के साथ हैं। ऐसा लगता है दिविवि का शिक्षक समुदाय कुलपति की दाब में आकर अपने को मीडियोकर मोड में ढालने को तैयार हो गया है। आशा की जानी चाहिए कि यह स्थिति ज्यादा देर तक नहीं रहेगी।

परीक्षा की हालत यह है कि एक सप्ताह किसी कालिज में अतिथि शिक्षक के तौर पर कुछ कक्षाएं पढ़ाने वाले 'शिक्षक' बड़ी संख्या में उत्तर-पुस्तिकाएं जांचते हैं। तदर्थ शिक्षक तो जांचते ही हैं। छात्रों को संतुष्ट रखने के लिए विश्वविद्यालय के 'निर्देश' हैं कि सबको खूब अंक दिए जाएं। पिछले

तीन-चार सालों से यह हो रहा है। एफवाईयूपी लागू होने के बाद छात्रों के तुष्टिकरण का यह काम और तेजी से होगा। पतन की पड़ताल में अगर और नीचे उतरा जाएगा तो पाठकों को विश्वास करना मुश्किल होगा कि देश के मूर्द्धन्य विश्वविद्यालय का नवउदारवादी नवाचारियों ने क्या हाल बना दिया है?

दिल्ली विश्वविद्यालय पूरे देश के छात्रों और अभिभावकों के आकर्षण का केंद्र इन्हीं तीन प्रमुख कारणों - पाठ्यक्रम, शिक्षण और परीक्षा - से रहता है। सेमेस्टर प्रणाली ने इन तीनों का विध्वंस कर दिया गया है। बचा-खुचा काम एफवाईयूपी कर देगा। यह दरअसल दिविवि को नष्ट करने की मुहिम है। उसके बाद देश के बाकी राजकीय विश्वविद्यालय नष्ट किए जाएंगे ताकि विदेशी विश्वविद्यालय यहां अपनी पैठ बना सकें। बाजारोन्मुख शिक्षा से शुरू होकर यह रास्ता शिक्षा के बाजार तक जाता है। कहने की जरूरत नहीं कि जो छात्र और अभिभावक आज ज्यादा अंक पाकर खुश होते हैं, उन्हें आगे निश्चित ही पछताना पड़ेगा। यह मेहनती और मेधावी छात्रों के साथ भी खुला अन्याय है।

हरीश त्रिवेदी ने सेमेस्टर प्रणाली के लागू होने का तर्क देते वक्त यह नहीं बताया कि इस प्रणाली के तहत काम दोगुना हो जाने के बावजूद न प्रशासन में, न ही शिक्षण में कोई नियुक्तियां हुई हैं। बल्कि पिछले तीन सालों से दिल्ली विश्वविद्यालय के कालेजों और विभागों में नियुक्तियां बंद हैं। ज्यादातर शिक्षण कार्य तदर्थ अध्यापकों द्वारा किया जा रहा है, जिनका बुरी तरह शोषण होता है और शिक्षक नेता उन्हें लेकर अपनी राजनीति चमकाते हैं। हरीश त्रिवेदी ने यह भी नहीं बताया कि उनका अपना विभाग सेमेस्टर प्रणाली का अंत तक विरोध करता रहा। तब वे भी विभाग में थे। लेकिन वे एकाएक रजामंद हो गए और अंग्रेजी विभाग में सेमेस्टर प्रणाली लागू हो गई। नवउदारवादी शब्दावली में इस तरह की पल्टी को 'एजुकेट' होना कहा जाता है।

कोई भी विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम, शिक्षण और परीक्षा तक सीमित नहीं होता। उसका एक खास माहौल होता है जिसमें स्वाभाविक खुलापन, बहस मुबाहिसा, रचनात्मक गतिविधियां, खेलकूद, एनसीसी, एनएसएस आदि होते हैं। दिविवि में यह सब खत्म किया जा रहा है। छात्रों और शिक्षकों को जो संगोष्ठी कक्ष आसानी से बिना शुल्क के मिल जाते थे, अब नहीं मिल पाते। साउथ कैंपस में कोई पत्रिकाओं/पुस्तकों की दुकान नहीं है। नार्थ कैंपस में एक्टिविटी सेंटर में एक थी, उसे बंद कर दिया गया है। साउथ कैंपस की अपनी चारदीवारी है, लेकिन फिर भी वहां चप्पे-चप्पे पर प्राईवेट एजेंसियों के गार्ड तैनात रहते हैं। गेट पर पुलिस चौकी होने के बावजूद एक पुलिस वैन हमेशा अंदर खड़ी रहती है।

शिक्षकों की गाड़ियों को नाके के नीचे से गुजरना होता है। आपसे कोई मिलने आ जाए तो उसे सुरक्षा गार्ड इतना परेषान कर देंगे कि दोबारा मिलने आने का नाम नहीं लेगा। यहां तक कि किसी प्रैस वाले का किसी शिक्षक से मिलने आना भी मना है। गोया कैंपस नहीं, छावनी हो। इस बंदिश पर हमने साउथ कैंपस के डिप्टी रजिस्ट्रार से कुछ दिन पहले लिखित तौर पूछा था। लेकिन उन्होंने उत्तर देना मुनासिब नहीं समझा। अलबत्ता इस बार के आम बजट के वक्त हमसे राय पूछने आने वाले एक टीवी चैनल के पत्रकारों को उन्होंने हमसे मिलने के लिए कैंपस में नहीं आने दिया। कहा कि रजिस्ट्रार साहब के आर्डर हैं कि कैंपस में किसी शिक्षक से प्रैस वालों को नहीं मिलने दिया जाए।

याद किया जा सकता है कि सेमेस्टर प्रणाली के खिलाफ शिक्षकों, कर्मचारियों और छात्रों का एकजुट विरोध हुआ था। उसमें सभी विचारधाराओं के शिक्षक और छात्र सम्मिलित थे। यूपीए सरकार और मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल की ताकत के आगे विरोध सफल नहीं हो पाया। बताया जाता है कि उसी समय एफवाईयूपी लागू करने का फैसला भी कपिल सिब्बल ने कर लिया था और उसे तत्काल लागू करने के लिए वर्तमान कुलपति को नियुक्त किया गया। नए कुलपति ने पहले शिक्षक संगठन डूटा को तोड़ने और निष्प्रभावी बनाने का काम किया। दुर्भाग्य से कुछ शिक्षक नेताओं ने इसमें भूमिका निभाई जिसकी सामान्य शिक्षकों को देर तक तकलीफ उठानी पड़ेगी।

कुछ दिनों पहले एक वरिष्ठ डूटा एक्टिविस्ट के साथ उन्हीं के कालिज में कुलपति की उपस्थिति में धक्कामुक्की हुई। आगे बाउंसरों द्वारा शिक्षकों और छात्रों के साथ बदसलूकी की घटनाएं बढ़ सकती हैं। क्योंकि विष्वविद्यालय के दो-चार कर्मचारियों को छोड़ कर, जो विश्वविद्यालय समुदाय का हिस्सा होने के नाते शिक्षकों और छात्रों को अपना सहयोगी मानते हैं, सारी सिक्योरिटी प्राइवेट कंपनियों के हवाले कर दी गई है।

एफवाईयूपी विवाद में शिक्षक समुदाय में परस्पर संदेह और विरोध का अस्वस्थ माहौल बना है जिससे उनकी एकजुटता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। छात्र शक्ति के एकजुट विरोध को रोका जा सके, इसके लिए हरियाणा के मुख्यमंत्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा के सांसद बेटे ने वीसी आफिस में बैठ कर लिंगदोह कमेटी की सिफारिशों की धज्जियां उड़ाते हुए एनएसयूआई को डूसू का चुनाव जिताया। दिविवि अपने करीब 80 कालेजों के लिए जाना जाता है। इन कालिजों की विभिन्न आधारों पर अलग-अलग रेंकिंग हो सकती है लेकिन टीचिंग स्टाफ सभी में कमोबेश अच्छी कोटि का है। इन कालिजों के प्रिंसिपलों की विश्वविद्यालय की समस्त गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सेमेस्टर लागू करने के वक्त जरूर कुछ प्रिंसिपलों ने कुछ न कुछ विरोध जताया था लेकिन इस मामले में वे सभी कुलपति का अंधानुकरण कर रहे हैं। वे यह ध्यान नहीं रखना चाहते कि 'आल

पावरफुल' कुलपति की गाज कभी उन पर भी गिर सकती है। स्कूल आफ ओपन लर्निंग (एसओएल) दिविवि का प्रमुख अंग है जिसमें कई लाख छात्रों को पत्राचार से शिक्षा दी जाती है। कुलपति ने पिछले दिनों एक वक्तव्य में एसओएल को 'भारी रेकेट' करार दिया। लेकिन वहां के शिक्षकों ने उसका लिखित या मौखिक विरोध नहीं किया। किसी ने यह भी नहीं पूछा कि आप पांच साल साउथ कैंपस के निदेशक रहे, पिछले दो साल से कुलपति हैं तो यह रेकेट आपने क्यों चलने दिया? बहरहाल, अपनी रणनीति में कुलपति हर स्तर पर सफल रहे हैं। उन्हें कांग्रेस के अलावा भाजपा का भी स्वाभाविक समर्थन है। सोचना यहां के शिक्षकों, छात्रों और कर्मचारियों को है।

पूर्व प्रधानमंत्री वाजपेयी ने प्राईमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक की नीति बनाने के लिए अंबानी-बिड़ला कमेटी बनाई थी। वह दुनिया में अपने ढंग का प्रयोग था कि बिना किसी शिक्षाविद को रखे केवल उद्योगपतियों को षिक्षा नीति बनाने का काम दिया गया था। हमने उस समिति की रपट पर 'शिक्षा के बाजारीकरण की रपट' शीर्षक से एक विस्तृत समीक्षा लिखी थी। समाजवादी शिक्षक मंच की ओर से वह जनहित में जारी भी की गई थी। तब हमें अंदेशा भी नहीं था कि अगले एक दशक में दिविवि में ही शिक्षा को बाजारीकरण की सूली पर चढ़ा दिया जाएगा। इसके लिए भी दिविवि के शिक्षकों को आत्मालोचन करना होगा।

एफवाईयूपी और सामाजिक न्याय की राजनीति

एफवाईयूपी पर चलने वाली बहस के कई आयाम हैं। लेकिन यह तथ्य सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि यह प्रोग्राम सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े छात्र-छात्राओं को उच्च शिक्षा से बाहर करने वाला है। सभी के लिए अनिवार्य फाउंडेशन कोर्स और मल्टीपल एग्जिट - यानी दो साल पर डिप्लोमा, तीन साल पर डिग्री और चार साल पर आनर्स की डिग्री देने की व्यवस्था - इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। ऐसे में यह स्वाभाविक है कि सामाजिक न्याय की राजनीति करने वाली पार्टियां और उनके नेता इस प्रोग्राम का सबसे पहले और निर्णायक विरोध करते। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। यूपीए सरकार सपा और बसपा के समर्थन पर टिकी है। उनमें सपा समाजवादी चिंतक डॉ. लोहिया का नाम लेती है और बसपा सामाजिक न्याय के पुरोधा डॉ. भीमराव अंबेडकर का। दोनों के वोट का आधार क्रमश: पिछड़ा और दलित समाज है, जिस पर खड़े होकर इनके नेता मुसलमानों के वोटों पर धावा बोलते हैं। यह आधार न हो तो अगड़े सवर्ण समाज के वोट, जिन्हें जाति-सम्मेलन आयोजित करके रिझाया जाता है, उनके काम नहीं आ सकते। अगर सपा और बसपा चार साला स्नातक प्रोग्राम का डट कर विरोध कर दें तो हो सकता है यूपीए सरकार इस पर पुनर्विचार करने के लिए तैयार हो जाए।

अन्य कई क्षेत्रीय पार्टियां हैं जो सामाजिक न्याय को अपनी राजनीति का आधार घोषित करती हैं। बिहार में राजद और जद (यू) तथा तमिलनाडु की क्षेत्रीय पार्टियां भी सामाजिक न्याय की राजनीति करती हैं। उनमें प्रमुख राजनीतिक पार्टी डीएमके अब यूपीए सरकार में शामिल भी नहीं है। लेकिन बिहार और तमिलनाडु से भी इस प्रोग्राम के विरोध में आवाज नहीं उठ रही है। एफवाईयूपी के विरोध के लिए गठित जोइंट एक्शन फ्रंट फार डेमोक्रेटिक एजुकेशन और डूटा नेतृत्व की तरफ से सभी पार्टियों के नेताओं/सांसदों से इस मुद्दे पर संपर्क करने की कोशिश की गई जो अभी जारी है। सीताराम येचुरी की पहल पर राज्यसभा के 11 और लोकसभा के 26 सांसदों ने प्रधानमंत्री को भेजी गई पेटीशन पर हस्ताक्षर किए। जद (यू) के अध्यक्ष शरद यादव ने एक साझा प्रैस वार्ता में उपस्थित होकर एफवाईयूपी का विरोध करने वाले संगठनों के प्रति अपना समर्थन जाहिर किया। हालांकि उनके लिए यह कोई गंभीर मुद्दा नहीं है, क्योंकि उसके बाद उन्होंने पलट कर नहीं देखा।

लोजपा नेता रामविलास पासवान ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखा और अस्वस्थ होने के बावजूद 22 जून 2013 को जंतर-मंतर पर आयोजित प्रतिरोध में शिरकत की। उन्होंने यह घोषणा की कि संसद का सत्र शुरू होने पर वे यह मुद्दा मजबूती से उठाएंगे। पासवान से डूटा के उपाध्यक्ष डॉ. हरीश खन्ना और जोइंट एक्शन फ्रंट फार डेमोक्रेटिक एजुकेशन के तत्वावधान में यह प्रोग्राम रद्द करवाने की मुहिम में लगे जस्टिस पार्टी के नेता डॉ. उदितराज ने मिल कर समर्थन करने का आग्रह किया था। बहरहाल, मुख्यधारा राजनीति के केवल एक सामाजिक न्यायवादी नेता ने दलित, आदिवासी, पिछड़े छात्र-छात्राओं के कैरियर पर एफवाईयूपी के नकारात्मक प्रभाव को गंभीरता से लिया है।

कांग्रेस और भाजपा दोनों नवउदारवादी नीतियों को लेकर एकमत हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, दिविवि में भाजपा के शिक्षक मंच एनडीटीएफ और छात्र मंच एबीवीपी ने कांगेस के साथ मिल कर एफवाईयूपी का समर्थन किया है। भाजपा के दिल्ली प्रदेशाध्यक्ष ने प्रैस को बयान जारी करके अपना समर्थन जाहिर किया। डॉ. उदितराज ने भाजपा के वरिष्ठ नेता अरुण जेतली से मुलाकात कर एफवाईयूपी के सामाजिक न्याय-विरोधी चरित्र के बारे में समझाया कि इसका समर्थन करने से वोट की राजनीति में भाजपा को मुश्किल का सामना करना पड़ सकता है। शायद वोट की राजनीति की खातिर अरुण जेतली ने एफवाईयूपी को एक साल स्थगित करने के अनुरोध का पत्र मानव संसाधन मंत्री पल्लम राजू को लिखा। हालांकि उसके बाद मुख्य विपक्षी पार्टी ने आगे कोई कार्रवाई नहीं की। जबकि एफवाईयूपी के विरोध का दायरा तब से काफी बढ़ गया है।

अरुण जेतली ने, भले ही वोटों की खातिर, मंत्री को पत्र लिख दिया लेकिन अधिकांश सामाजिक न्याय की राजनीति के दावेदारों ने उतना भी नहीं किया है। इन पार्टियों के नेताओं से शिक्षा जैसे गंभीर विषय पर किसी गंभीर समीक्षा की अपेक्षा नहीं की जा सकती। न ही उनसे नवउदारवाद के विरोध की अपेक्षा की जा सकती है। लेकिन क्या उन्हें अपने आधार वोटों की भी फिक्र नहीं है? दरअसल, उनके लिए सामाजिक न्याय का अर्थ जातिवाद और धर्मनिरपेक्षता का कार्ड खेलना है। मनमोहन सिंह जानते हैं कि जातिवाद और धर्मनिरपेक्षता का कार्ड ये नेता एफवाईयूपी लागू होने के बाद भी बखूबी खेलेंगे और केंद्र में कांग्रेस या भाजपा का समर्थन करेंगे। यह लगता नहीं कि कैसे भी दबाव से राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री दखल देकर एफवाईयूपी को रोक देंगे। वे हो सकता है इसे पूरे देश में थोपने के लिए संसद में उसी तरह से पारित करें जैसे भारत-अमेरिका परमाणु करार किया गया था।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेख दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक हैं*)